THE TIMES OF INDIA

Date: 27-08-26

Make In India Inc

DRDO tech transfer is the kind of move that helps build a defence-industrial complex

TOI Editorials

GOI's approval for the transfer of DRDO-developed conventional missile tech to wider domestic private companies, is significant in two ways. First, it shows that govt is keenly following the dynamics of modern warfare, and responding to the need for indigenising its strategic weapon systems. Russia-Ukraine war and US-Israel war against Iran made this objective urgent. The lesson is clear – missiles produced in peace time simply cannot meet the demands of a kinetic conflict. Stockpiles run out in days, and production in the middle of war is complicated by supply chains that run around the world. For example, UK recently handed over blueprints for its Storm Shadow cruise missile to Ukraine. But that's not going to immediately change the trajectory of that war. It will take time for Kyiv to source components, and get production started.

But if DRDO transfers missile tech to private players today, it should help create an indigenous ecosystem of parts and components, reduce import dependence, and enhance operational capabilities in war time. This brings us to the second part – fillip for indigenous defence production and exports. Having a solid military-industrial complex is vital for strategic security, and enhancing India's profile as an arms supplier. The latter is already evident from data – Indian defence exports have gone from 686cr in 2013-14 to a record 38,424cr in 2025-26. India is also supplying strategic systems like the BrahMos to Philippines, Vietnam, and Indonesia. But there is room for improvement, and the goal ought to be to establish something akin to the American defence-industrial base.

That would require a lot of flexibility and freedom to innovate, backed by large and steady orders. Drone procurement for the military has seen success using this formula, where procurement platforms like Govt e-Marketplace and iDEX portal have allowed start-ups to directly bid for military tenders, or apply for prototype grants, and co-development. What works here is reduction in administrative compliance cost. That's the way to go.

दैनिक भास्कर

Date: 27-08-26

हमें बुनियादी महत्व के मुद्दों पर फोकस बढ़ाना होगा

संपादकीय

2036 तक भारत में चीन के 10.3 करोड़ के मुकाबले 10.8 करोड़ ऐसे उपभोक्ता होंगे, जो रोजाना 90 डॉलर से अधिक खर्च करते हैं। लेकिन नीलसन आईक्यू और वर्ल्ड डेटा लैब की संयुक्त रिपोर्ट को अन्य तथ्यों के साथ देखें तो तस्वीर बदल जाती है। चीन की प्रति व्यक्ति आय भारत से पांच गुना से भी अधिक है। ऐसे में उपभोक्ता गणना का यह आंकड़ा यह नहीं बताता कि इस गिनती से कौन बाहर रह गया, और क्यों । भारत बनाम चीन को नए अमीरों की संख्या पर नहीं, बल्कि इस सवाल पर परखा जाना चाहिए कि किस देश में गरीबों की स्थिति क्या रही और उसके लिए सरकारों ने क्या किया। चीन ने 1970 के दशक के अंत में सुधार और खुलेपन का दौर शुरू किया और 77 करोड़ से अधिक लोगों को गरीबी से बाहर निकाला। भारत को लेकर वर्ल्ड इनइक्वलिटी लैब की 2026 की रिपोर्ट है कि शीर्ष 10% लोगों के पास राष्ट्रीय आय का 58% है, जबकि निचले 50% यानी करीब 70 करोड़ लोगों के पास महज 15% है। इस निचले आधे हिस्से का आय में शेयर घटता रहा है। भारत के शीर्ष 1% की राष्ट्रीय संपत्ति में हिस्सेदारी 2012 के 27.3% से बढ़कर 2025 तक 38.5% हो गई है। कुल जीएसटी संग्रह का 64% इसी निचले तबके से आता है जबकि संपन्न 10% का योगदान 4% ही है। भारत के ग्रामीण इलाकों में कक्षा तीन के केवल 25 प्रतिशत बच्चे कक्षा दो के स्तर का पाठ पढ़ पाते हैं। उपभोग नहीं, बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा में आगे आना ही किसी भी कल्याणकारी राज्य का असली ध्येय होना चाहिए।

Date: 27-08-26

वेलफेयर योजनाएं नौकरियों की जगह नहीं ले सकती हैं

आशुतोष वार्ष्णेय, (आशुतोष वार्ष्णेय ब्राउन यूनिवर्सिटी, अमेरिका में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर)

2024 के लोकसभा चुनावों के दौरान मैं अवध में फील्ड रिसर्च कर रहा था। यह लखनऊ के आसपास का इलाका था। मेरी टीम और मैं एक मध्यम उम्र के कम आय वाले दम्पती से मिले। उन्होंने प्रधानमंत्री नरेंद्र

मोदी को उनकी मुफ्त राशन योजना के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि वे भाजपा को वोट देंगे। जैसा कि सभी जानते हैं, भारत में 80 करोड़ लोग गरीब कल्याण अन्न योजना के दायरे में आते हैं। यह देश की कुल आबादी का करीब 60 प्रतिशत है।

इस दम्पती ने यह भी बताया कि राशन की दुकान उन्हें हर महीने उनका पूरा हिस्सा नहीं देती थी- 5 में से सिर्फ 4 किलो देती थी, लेकिन उनके लिए यह पहले से बेहतर था, क्योंकि पहले राशन की दुकान का मालिक इससे भी ज्यादा राशन चोरी कर लेता था। अलबत्ता वे चाहते थे कि हम उनके बेटे से भी बात करें, जो पास के बाजार में एक दुकान पर बैठा था।

इस युवा को पास के शहर रायबरेली के एक कॉलेज से इंजीनियरिंग की डिग्री मिल चुकी थी। उसने कहा कि उसके माता-पिता का विचार सही नहीं था। सरकारी नौकरी के लिए होने वाली परीक्षाओं के पेपर दो बार लीक हो चुके थे और परीक्षाएं नहीं हो सकी थीं।

इसी वजह से उसके पास नौकरी नहीं थी, जबकि उसने बहुत मेहनत की थी। उसने जोर देकर कहा कि अगर उसके पास नौकरी होती, तो सरकार के राशन की कोई जरूरत ही नहीं होती। तब वह अपने माता-पिता के लिए उनकी जरूरत का भोजन खरीद सकता था।

यह बात हाल के उन छात्र-प्रदर्शनों पर बहुत असर डालती है, जो पेपर लीक के कारण शुरू हुए थे। भारत के युवा सरकारी राशन लेते रहने के बजाय नौकरी करना ज्यादा पसंद करेंगे। सत्ता में आने के लिए सरकार ने सब्सिडी पर ज्यादा भरोसा किया है; उसने पर्याप्त रोजगार पैदा नहीं किए हैं। इन प्रदर्शनों के साथ शायद यह रणनीति अब बेअसर हो गई लगती है।

कल्याणकारी सब्सिडी हमेशा ही नौकरियों की जगह नहीं ले सकती। इन अर्थों में इन प्रदर्शनों का एक पहलू राजनीतिक अर्थव्यवस्था से जुड़ा था और इस पर पर्याप्त चर्चा नहीं हुई है। बीती गर्मियों में अपनी भारत-यात्रा के दौरान मैं पांच हफ्तों से ज्यादा समय तक दिल्ली, चेन्नई और श्री सिटी, बेंगलुरु, मुंबई और पुणे में रहा। मैं जंतर-मंतर से संसद तक मार्च होने से करीब दो हफ्ते पहले दिल्ली पहुंचा था। लेकिन उस मार्च के बाद आया बड़ा बदलाव साफ दिखाई देता है।

सार्वजनिक जगहों पर लोग अब ज्यादा खुलकर बोल रहे हैं। मुझे लगता था कि युवाओं के प्रदर्शनों की जमकर आलोचना की जाएगी। उन पर व्यंग्य कसे जाएंगे और उन्हें भारतीय संस्कृति के विरुद्ध बताया जाएगा। कुछ लोगों ने ऐसा किया भी है, लेकिन शीर्ष नेतृत्व के सबसे ऊंचे स्तरों ने इससे बिल्कुल अलग रास्ता अपनाया है। उन्होंने आलोचना करने और नसीहत देने के बजाय मिली-जुली प्रतिक्रिया की रणनीति अपनाई है। उन्होंने युवाओं की चिंताओं को बेहतर तरीके से समझने की इच्छा जताई है।

यह समझना आसान है कि भाजपा ने यह रणनीति क्यों अपनाई। वोटिंग के आंकड़ों में इसकी वजह है। लोकनीति के डेटाबेस के अनुसार, सभी उम्र के लोगों में 18-25 साल के लोगों ने 2019 और 2024 में भाजपा को सबसे ज्यादा वोट दिए थे। पिछले दो लोकसभा चुनावों में भाजपा का राष्ट्रीय औसत वोट करीब 37 प्रतिशत रहा है। इनमें 18-25 साल के लोगों का औसत करीब 40 प्रतिशत रहा है।

इसके बाद 26-35 साल की उम्र के लोग आते हैं। भारत की करीब दो-तिहाई आबादी 35 साल से कम उम्र की है। इसलिए ये आंकड़े भारत के वोटरों के बहुत बड़े हिस्से को दिखाते हैं। जाहिर है कि भाजपा इस समूह को अपने खिलाफ नहीं जाने दे सकती है।

भारत के युवा अब जोर देकर कह रहे हैं कि अगर उसके पास नौकरी होती, तो सरकार के मुफ्त राशन की कोई जरूरत ही नहीं होती। तब वे अपने माता-पिता और परिवार के लिए उनकी जरूरत का पूरा भोजन स्वयं ही खरीद सकते थे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 27-08-26

स्वयं सहायता समूहों से मिलने वाला सबक

एम एस श्री राम, (लेखक, सेंटर फॉर पब्लिक पॉलिसी, भारतीय प्रबंध संस्थान, बेंगलूरु में प्रोफेसर हैं)

पिछले कई दशकों में स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) ग्रामीण वित्त की तस्वीर बदल दी है। इस आंदोलन ने कई पुरानी धारणाओं को चुनौती दी। उसने यह दिखाया कि यदि अनौपचारिक लेनदेन की अच्छी बातों को समझकर और अलग तरीके की सोच के साथ उन्हें एक व्यवस्थित रूप दिया जाए तो एक सफल वित्तीय व्यवस्था बनाई जा सकती है। अब नीतिगत सवाल यह है कि क्या हमें जमीनी स्तर से विकसित हो रही इस व्यवस्था को स्वाभाविक तरीके से आगे बढ़ने देना चाहिए या फिर उसे तेजी से बढ़ाने के लिए बाहर से अतिरिक्त सहारा देना चाहिए?

स्वयं सहायता समूह आंदोलन की शुरुआत बचत से हुई थी। ग्रामीण वित्त व्यवस्था में उस समय यह एक अलग तरह की पहल थी क्योंकि इसमें शुरुआत से ही ऋण को सामूहिक तौर पर केंद्र में नहीं रखा गया। इसके बजाय लोगों को पहले छोटी- छोटी रकम बचाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इस आंदोलन का खास लक्ष्य ग्रामीण गरीब महिलाएं थीं। इससे उस पारंपरिक सोच को भी चुनौती मिली जिसमें माना जाता था कि परिवार का मुखिया गरीबी दूर करने वाली योजनाओं के केंद्र में होना चाहिए जो आमतौर पर पुरुष होता है। कुछ लोग इसकी वजह यह बता सकते हैं कि महिलाएं परिवार की देखभाल करती हैं और इसलिए उनमें स्वाभाविक रूप से बचत करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। लेकिन बात केवल इतनी नहीं है। इस कार्यक्रम की बनावट को देखें तो यह मूल रूप से एक अच्छे वित्तीय उत्पाद की डिजाइन का मामला था।

महिलाएं नियमित रूप से छोटी और निश्चित रकम बचाती थीं। यह रकम हर सप्ताह या हर महीने जमा की जाती थी और यह इस बात पर निर्भर करता था कि स्वयं सहायता समूह कैसे बनाया गया है। एक तय दिन समूह की बैठक होती और सभी सदस्य अपनी बचत वहां जमा करतीं। बैठक ऐसी खुली और नजदीकी जगह पर होती थी, जहां महिलाओं के लिए पहुंचना आसान हो । अधिकांश समूह बचत पर कोई ब्याज नहीं देते थे। फिर भी महिलाएं पैसे जमा करती थीं क्योंकि वे अपनी थोड़ी-सी रकम सुरक्षित और भरोसेमंद जगह पर रखना चाहती थीं।

लेकिन बचत ही इस व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य नहीं था। समूह में जमा रकम को उन सदस्यों को ऋण के रूप में दिया जाने लगा जिन्हें तत्काल पैसों की जरूरत होती थी। इस ऋण पर समूह ब्याज लेता था। ब्याज की दर आम तौर पर स्थानीय अनौपचारिक ऋण बाजार की दरों के आसपास रखी जाती थी ताकि ब्याज दर में बहुत ज्यादा अंतर का फायदा उठाकर कोई अनुचित लाभ न उठा सके। इस व्यवस्था की एक खास बात यह थी कि ब्याज की दरें महिलाओं की समझ के अनुसार स्थानीय भाषा और तरीके से बताई जाती थीं।

इस तरह स्वयं सहायता समूह एक तरह का छोटा स्थानीय बैंक बन गया था। समूह में जमा होने वाली अतिरिक्त राशि को हर साल दीवाली और दशहरे जैसे त्योहारों पर सदस्यों के बीच उपहार के रूप में बांटा जाता था। इससे वित्तीय व्यवस्था स्थानीय संस्कृति और परंपराओं से भी जुड़ी रहती थी।

इसके बाद अगला स्वाभाविक कदम था कि समूह की जमा बचत को आधार बनाकर उसे बैंक से जोड़ा जाए और समूह के लिए बैंक ऋण लिया जाए। जैसे-जैसे समूह मजबूत और व्यवस्थित होते गए, उनका औपचारिक वित्तीय व्यवस्था से जुड़ना भी शुरू हुआ। लेकिन स्वयं सहायता समूह की इस मूल भावना को व्यापक रूप से समझने के बजाय, सरकार और व्यवस्था ने धीरे-धीरे इसे गरीबी दूर करने और आजीविका बढ़ाने के पुराने तरीके से जोड़ दिया। समूहों को अनुदान के रूप में पैसा दिया जाने लगा, जिसे वे आगे सदस्यों को सस्ते ऋण के रूप में दें। साथ ही समूहों को अधिक से अधिक बाहरी ऋण लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसका एक अनपेक्षित परिणाम सामने आया । कई समूहों और उनके सामुदायिक संगठनों के पास आज बड़ी मात्रा में निष्क्रिय नकदी पड़ी है जबकि उनके सदस्य ऋण नहीं ले पा रहे हैं।

स्वयं सहायता समूह आंदोलन वास्तव में बैंकिंग व्यवस्था के लिए एक बहुत बड़ा अवसर था। बैंक इन समूहों को अपने साथ जोड़कर छोटे-छोटे बचतकर्ताओं और उधार लेने वालों को एक साथ संगठित कर सकते थे। इससे बैंक अपनी पूरी वित्तीय व्यवस्था में समूहों की सामूहिक ताकत और कम लागत वाली पहुंच का फायदा उठा सकते थे।

जब भी गरीब लोगों की छोटी छोटी बचत की बात होती है, तो अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि इतनी छोटी रकम के साथ बड़े बैंकों के लिए काम करना आर्थिक रूप से लाभदायक नहीं है। यहीं पर हमें अनौपचारिक वित्तीय व्यवस्थाओं से सीखने की जरूरत है, ठीक उसी तरह जैसे सूक्ष्म ऋण ने अनौपचारिक व्यवस्था से कई बातें सीखीं। हमें यह समझना होगा कि समस्या वास्तव में कहां है और फिर उसका व्यावहारिक समाधान खोजना होगा। इसके बजाय यह मान लेना कि गरीब ग्राहक खुद अपने हित को नहीं समझते और उनके लिए फैसले हमें लेने चाहिए यह वास्तव में एक संरक्षकवादी सोच है। ग्राहक पद- लिख न पाए हों, इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि वे समझदार नहीं हैं। वे अपनी जरूरतों, पैसों और जोखिमों को अच्छी तरह समझते हैं।

गरीब लोग वित्तीय उत्पादों की असल उपयोगिता को समझते हैं। उन्हें इस बात से बहुत फर्क नहीं पड़ता कि मौद्रिक नीति में ब्याज दर बदलने के बाद उनके बचत खाते की ब्याज दर में कुछ आधार अंक यानी कुछ मामूली बदलाव हुआ या

नहीं। उनके लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि पैसा जमा करना कितना आसान है, सेवाओं तक उनकी पहुंच कितनी करीब है और जरूरत पड़ने पर लेनदेन कितनी आसानी से हो सकता है।

गरीबों की बचत को औपचारिक बैंकिंग व्यवस्था से जोड़ते समय भी इसी तरह का नजरिया अपनाना चाहिए। अनौपचारिक बचत व्यवस्थाओं को देखें तो गरीब आम तौर पर ज्यादा रिटर्न की तलाश में नहीं रहते। वे चाहते हैं कि उनका पैसा सुरक्षित रहे, पास में रहे और उसे जमा करना या निकालना आसान हो। कई मामलों में तो वे अपनी बचत को सुरक्षित रखने के लिए इसके बदले कुछ पैसे देने को भी तैयार रहते हैं। ऐसे में नीति-निर्माता छोटे और नियमित बचत खातों के लिए कम ब्याज दर की व्यवस्था पर भी प्रयोग कर सकते हैं। इससे वित्तीय संस्थानों की लागत कम हो सकती है और गरीब लोगों के लिए बचत की सुविधा बढ़ाई जा सकती है। असली समाधान ज्यादा ब्याज देने में नहीं, बल्कि बचत तक आसान पहुंच उपलब्ध कराने में हो सकता है।

आंध्र प्रदेश के अनंतपुर में एक स्वयं सहायता समूह ने बचत को बीमा से जोड़ने का एक दिलचस्प प्रयोग किया। अनंतपुर के इस समूह ने एक बीमा एजेंट की मदद ली और सदस्यों के लिए लंबी अवधि की ऐसी बीमा पॉलिसी ली, जिसमें पॉलिसी की अवधि के दौरान कोई अनहोनी न होने पर जमा किया गया पैसा वापस मिलना था। लेकिन इसमें एक समस्या थी । बीमा कंपनी समूह को मासिक प्रीमियम जमा करने की सुविधा नहीं देना चाहती थी क्योंकि समूह छोटा था और बीमा की रकम भी कम थी। समूह ने इसका एक सरल समाधान निकाला। सभी सदस्यों को सालाना प्रीमियम वाली पॉलिसी में शामिल कर दिया गया। हर सदस्य को सालाना प्रीमियम भरने के लिए ब्याज मुक्त ऋण दिया गया। इस तरह स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के लिए सालाना प्रीमियम व्यावहारिक स्तर पर मासिक भुगतान जैसा हो गया। प्रीमियम का आधा हिस्सा समूह के अपने फंड से दिया गया जो पैसा वास्तव में समूह ने समय के साथ बचत और मुनाफे से जमा किया था।

यह उदाहरण बताता है कि यदि अंतिम व्यक्ति तक वित्तीय सेवा पहुंचाने के तरीके में थोड़ी रचनात्मकता दिखाई जाए तो छोटी रकम और कम ग्राहक संख्या की समस्या को भी दूर किया जा सकता है। अब समय आ गया है कि नीति-निर्माता और वित्तीय बाजार यह तर्क देना बंद करें। कि गरीबों के लिए बचत योजनाएं आर्थिक रूप से व्यवहारिक नहीं हैं। इसी तरह वित्तीय साक्षरता और सशक्तीकरण के नाम पर गरीबों को लगातार यह समझाना भी बंद होना चाहिए कि उन्हें अपने पैसे के बारे में क्या करना चाहिए। जरूरत है कि पहले उचित वित्तीय योजना का डिजाइन तैयार किया जाए। अगर योजना उनकी जरूरत, आय और व्यवहार के अनुकूल होगी तो गरीब लोग खुद उसकी उपयोगिता समझ लेंगे।

समस्या यह नहीं है कि गरीब बचत नहीं कर सकते। समस्या यह है कि वित्तीय सेवा देने वाले उनकी जरूरत को ठीक से समझ नहीं पा रहे हैं। अब जरूरत है कि इस विषय पर बातचीत आगे बढ़े और ये बातचीत किसी ठोस, व्यावहारिक और लागू की जा सकने वाली पहल में बदले।

जनसत्ता

Date: 27-08-26

बाढ़ की त्रासदी

संपादकीय

तिब्बत से लगे नेपाल के रसुवा और आसपास के क्षेत्रों में बुधवार को आई बाढ़ से बड़े पैमाने पर हुए जान-माल के नुकसान ने सभी को झकझोर दिया है। इस त्रासदी में कई लोगों की जान चली गई, जबकि पांच सौ से ज्यादा लापता हैं, जिनमें सौ से अधिक भारतीय भी शामिल हैं। बाढ़ से कई पुल बह गए और कम से कम एक दर्जन जलविद्युत परियोजनाएं क्षतिग्रस्त हो गई। प्रारंभिक अध्ययन रिपोर्टों और उपग्रह से ली गई तस्वीरों के विश्लेषण से पता चला है कि नेपाल-तिब्बत सीमा के पास पहाड़ी से चट्टानों के खिसकने के बाद बाढ़ आई यानी यह हिमालय की संवेदनशीलता और उसकी पारिस्थितिकीय प्रकृति को समझने तथा विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाने को लेकर एक गंभीर चेतावनी है। बाढ़ की खौफनाक तस्वीरों से यह समझना मुश्किल नहीं है कि जब प्रकृति अपना रौद्र रूप दिखाती है, तो मानव सभ्यता उसके आगे बेबस हो जाती है। प्रकृति और मनुष्य का संबंध अत्यंत गहरा एवं परस्पर निर्भरता पर आधारित है और जब इसमें कृत्रिम असंतुलन होता है, तो यह विनाशकारी घटनाओं का कारण बनता है।

खबरों के मुताबिक, सबसे पहले भोटे कोशी नदी में अचानक बाढ़ आई, जिससे तिब्बत की सीमा से लगे नेपाल के रसुवा और धादिंग जिले प्रभावित हुए। पानी और मलबे का बहाव इतना तेज था कि आसपास के धादिंग, नुवाकोट और चितवन जिले भी इसकी चपेट में आ गए। बाढ़ से लापता भारतीयों में से ज्यादातर तिब्बत में कैलाश मानसरोवर यात्रा के लिए जा रहे थे। नेपाल के बाद पूर्वानुमान प्रभाग के मुताबिक, पहाड़ी से चट्टानों एवं मिट्टी के खिसकने से नदी अवरुद्ध हो गई और वहां बनी झील के टूटने से भीषण बाढ़ आई यह त्रासदी इस बात का संकेत है कि हिमालयी क्षेत्र पारिस्थितिकीय रूप से कितना संवदेनशील है। प्रकृति हमें जल, वायु, भूमि, वन और जीवन के लिए आवश्यक अनेक संसाधन प्रदान करती है। मगर विकास और आधुनिक जीवन की दौड़ में मनुष्य ने प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखने के बजाय उसका अंधाधुंध दोहन शुरू कर दिया है। जंगलों की कटाई, पहाड़ों का अतिक्रमण, नदियों के मार्गों में हस्तक्षेप और अनियोजित निर्माण जैसे कार्यों का परिणाम बाढ़ जैसी विनाशकारी त्रासदियों के रूप में सामने आ रहा है।

सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जिन नदियों को नेपाल की अर्थव्यवस्था और ऊर्जा संभावना की जीवनरेखा माना जाता है, उन्हीं के किनारे बेतरतीब बस्तियां, सड़कें और अन्य ढांचागत संरचनाएं तैयार कर दी गई हैं। विकास आवश्यक है, लेकिन इस क्रम में पहाड़ों की प्रकृति की अनदेखी अंततः जोखिम का विस्तार बन जाता है। जलवायु परिवर्तन ने इस समस्या को और गंभीर बना दिया है। मौसम का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। कहीं लंबे समय तक सूखा पड़ता है, तो कहीं बहुत कम समय में अत्यधिक वर्षा या बादल फटने की घटनाएं बढ़ रही

हैं साफ है कि पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ बाद जैसी त्रासदी को जन्म देती है। बहरहाल, विदेश मंत्रालय का कहना है कि नेपाल में बाढ़ से प्रभावित भारतीय नागरिकों के बचाव और उन्हें राहत पहुंचाने के लिए वहां की सरकार के साथ लगातार संपर्क एवं समन्वय किया जा रहा है। मगर, इस बाढ़ से नेपाल के साथ लगते बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में भी खतरा मंडराने लगा है। केंद्र और राज्य सरकारों को चाहिए कि वहां एहतियाती तौर पर सुरक्षा के माकूल प्रबंध किए जाएं, ताकि किसी तरह के नुकसान से बचा जा सके।

Date: 27-08-26

व्यवस्था में जवाबदेही की दरकार

सुरेश सेठ

भारतीय राजनीति के चेहरे को पहचानना अब आसान नहीं है। नेता जब चुनाव मैदान में उतरते हैं, तो उनके खास नारों में भूख मिटाने और बेरोजगारों को नौकरियां देने के वादे शामिल रहते हैं। भ्रष्टाचार खत्म कर देने के भी पुरजोर दावे होते हैं। मगर जब वे सत्ता में आते हैं, तो इन सभी मुद्दों पर चुप्पी साध लेते हैं।

विचित्र बात यह है कि पद संभालते ही उनका एक प्रिय संदेश होता है कि भ्रष्टाचार कतई बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। तब जिस लोक कल्याणकारी व्यवस्था की कल्पना वे प्रस्तुत करते हैं, उसमें किसी को भी भूख से न मरने देने की गारंटी तो होती है, लेकिन नौकरियां देने का कोई संकल्प नहीं होता। यह विडंबना नहीं, तो और क्या है।

देश को डिजिटल और कृत्रिम मेधा में सर्वश्रेष्ठ बना देने की बड़ी-बड़ी बातें होती हैं, लेकिन महत्त्वपूर्ण परीक्षाओं के प्रश्नपत्र लीक नहीं होंगे, इसकी कोई गारंटी नहीं होती। सत्तारूढ़ नेताओं के प्रिय वाक्यों में एक यह भी रहता है कि इस बार बरसात का सामना करने के लिए हम तैयार हैं। जनता को आवागमन में कोई दिक्कत नहीं होगी। जलभराव को रोकने और जनजीवन को सुरक्षित रखने के लिए सभी उपाय कर लिए गए हैं। मगर हकीकत में ऐसा कुछ भी नहीं होता। कुछ घंटों की बारिश में ही सड़कें जलमग्न हो जाती हैं। ज्यादातर रास्तों पर बने गड्ढे अंधे कुएं में बदल जाते हैं।

हरियाणा का गुरुग्राम औद्योगिक और व्यावसायिक दृष्टि से आधुनिक है। यहां भी यह हाल है कि पिछले दिनों दो घंटे की तेज बारिश से इलाका जलमग्न हो गया। इससे पता चलता है कि हमारी व्यवस्था किस कदर विफल है। देश भ्रष्टाचार के दलदल में अगर डूबा है, तो इसके लिए जिम्मेदार वे नेता हैं, जो यह दावा करते आए हैं कि भ्रष्टाचार को बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं किया जाएगा और फिर उसे होने देते हैं। भ्रष्टाचार के आरोप में कुछ नेता अवश्य पकड़े जाते हैं, लेकिन ऐसा कभी नहीं पाया गया कि किसी को बड़ी सजा दी गई हो और उसका दूरगामी प्रभाव पड़ा हो।

दूसरी ओर, राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में निवेश आकर्षित करने के लिए नियम बनाती हैं, लेकिन जब वे असुविधा पैदा करने लगते हैं, तो भ्रष्ट आचरण शुरू हो जाता है। हर फाइल को आगे बढ़ाने के लिए चांदी के पहिए लगाए जाते हैं। इनको ढोने वाले बीच के लोग भी इस संस्कृति के वाहक बन जाते हैं। इस लिहाज से देखें, तो मानसून में जलभराव न सिर्फ प्रशासनिक लापरवाही, बल्कि भ्रष्ट तौर-तरीके अपनाने वाले तंत्र की कलई भी खोलते हैं।

एक उदाहरण उत्तर प्रदेश से लिया जा सकता है। यहां 4,200 करोड़ रुपए की लागत से 63 किलोमीटर लंबे लखनऊ-कानपुर एक्सप्रेस-वे का उद्घाटन कुछ समय पहले हुआ था। तब इसे राज्य में आवागमन के लिए बड़ी उपलब्धि बताया गया था। यह भी कहा गया कि इस मार्ग से यात्रा करने में समय की बहुत बचत होगी। मगर जब बारिश हुई, तो जिस एक्सप्रेस-वे को वर्षों तक चलना था, वह एक महीने में ही धंस गया।

दावा किया गया कि राजमार्ग आधुनिक तरीके से बनाया गया है। यह भी कहा गया कि अमेरिका और जर्मनी के बाद भारत में पहली बार नई तकनीक से सड़क बनी है। मगर क्या वजह रही कि इस मार्ग पर बारिश पड़ते ही उन्नाव से लखनऊ के बीच पैंतालीस किलोमीटर के हिस्से में इतनी टूट-फूट हो गई कि चालीस जगह उसकी मरम्मत कराने की जरूरत पड़ गई।

आज कहीं से कोई सवाल नहीं उठता। इस बार भी किसी ने नहीं पूछा कि जिस सड़क को मजबूत बनाने का दावा किया गया था, वह निर्माण के एक महीने से भी कम समय में कैसे खराब हो गई? किन ठेकेदारों ने इसे बनाया और किन अधिकारियों ने इसके गुणवत्तापूर्ण निर्माण की मंजूरी दी। सवाल कोई नहीं पूछेगा। कोई पूछ भी लेगा, तो उसे जवाब नहीं मिलेगा।

इस मामले में बस इतना भर हुआ कि मरम्मत पूरी होने तक, टोल टैक्स लेना बंद कर दिया गया और ठेकेदार को काली सूची में डाल दिया गया। मगर सवाल यह है कि एक्सप्रेस-वे पर आवागमन शुरू करने के लिए जिन अफसरों ने हरी झंडी दिखाई, उन पर कार्रवाई क्यों नहीं हुई? हालांकि अब जांच होगी, लेकिन भ्रष्टाचार की कीमत उस जांच को खा जाएगी। यह स्थिति उत्तर प्रदेश में ही नहीं, बल्कि सभी जगह यही हाल है।

आज जहां भी बारिश होती है, शहरों के नियंत्रण कक्ष में गंदे पानी की आपूर्ति से लेकर जलभराव की शिकायतों का अंबार लग जाता है। यह देश में आम नजारा है कि एक घंटा बारिश होती है और तीन-चार घंटे तक सड़कों पर पानी जमा रहता है। ऐसी तस्वीरें पंजाब से लेकर दिल्ली और बिहार से लेकर मुंबई तक में आमतौर पर दिखाई देती हैं। जलभराव की वजह यह है कि नालों और सीवर की समय पर सफाई नहीं होती। उखड़ी हुई सड़कों की मानसून से पहले मरम्मत नहीं होती। विचित्र बात है कि बरसात के दिनों में ही नई योजनाएं शुरू होती हैं। दूसरी ओर, नदी-नालों से लेकर बांधों तक से गाद नहीं हटाई जाती। अलबत्ता वादे जरूर किए जाते हैं, लेकिन उन पर अमल नहीं किया जाता। इसकी वजह समझना कोई मुश्किल नहीं है।

आज देश में विकास के दावे तो किए जा रहे हैं, लेकिन इस क्रम में भ्रष्ट तंत्र ने बाधाएं भी खड़ी की हैं। जहां-जहां नई बस्तियां विकसित की गईं, उसकी आड़ में नदियों के किनारे अतिक्रमण कर रिहाइशी इमारतें भी बनाई गईं। विकास योजनाओं में लापरवाही बरती गई। नालों की सफाई में घोटाले का नतीजा यह कि बारिश में सड़कें लबालब भर जाती हैं।

इसका सबसे बड़ा उदाहरण गुरुग्राम में दिखता है। जलंधर, लुधियाना और अमृतसर में तो राजमार्ग तक पानी भर जाता है। व्यवस्था किस कदर भ्रष्ट तंत्र का शिकार हो गई है, इसे इन मामलों से समझा जा सकता है। सवाल है कि अधिकारी समय से पहले काम पूरा होने पर ध्यान क्यों नहीं देते। अगर काम होता भी है, तो उसकी ईमानदारी से निगरानी कर ठेकेदारों पर सख्त कार्रवाई क्यों नहीं होती?

आज अधिकतर राज्यों में गंदे पानी की आपूर्ति की शिकायतें आम हैं। इस मामले में हर शहर में मनमानी और लापरवाही बरती जाती है। ठेकेदारों की सांठगांठ किसी से छिपी नहीं है। ठेका लेने वालों ने ईमानदारी से काम किया या नहीं, कहीं घटिया सामग्री का इस्तेमाल तो नहीं हुआ, इसकी किसी स्तर पर जांच नहीं होती। जब शिकायतें बढ़ जाती हैं, तब अधिकारी जागते हैं। मगर इससे पहले काम पूरा होने का प्रमाणपत्र ठेकेदारों को मिल चुका होता है।

नतीजा यह कि अधूरे और लापरवाही से किए गए कार्यों को जनता झेलती है। ऐसी स्थिति में समाधान एक ही है- 'यहां सब चलता है' की मनोवृत्ति को अब बदलना होगा। बिचौलिया संस्कृति को खत्म करना होगा। निर्माण कार्यों का ईमानदारी से निरीक्षण हो। काम पूरा होने का प्रमाणपत्र सभी कसौटियों पर परख के बाद ही दिया जाए। यह निराशाजनक ही है कि ज्यादातर जगहों पर ऐसा नहीं हो रहा है।

आज भ्रष्टाचार में जकड़ी हुई व्यवस्था को दुरुस्त करने की जरूरत है। यह तभी संभव होगा, जब संबंधित विभागों और उनके आला अधिकारियों की जवाबदेही तय की जाएगी और सख्त नियम बना कर दोषियों को न्याय के कठघरे में लाया जाएगा। समूचे तंत्र में बुनियादी परिवर्तन अब समय की जरूरत है।